साहित्यसुधा

साहित्यकारों की रचना स्थली

साहित्यकारों की वेबपत्रिका

वर्ष: 3, अंक 46, अक्टूबर(प्रथम) , 2018

अभिनय

अमिताभ कुमार "अकेला"

- " ऐ जमूरे....."
- " जी उस्ताद....."
- " बाप बड़ा या बन्दर...."
- " बन्दर....."
- " अक्ल बड़ा या चुकन्दर....."
- " चुकन्दर....."
- " धरती बड़ी या समन्दर...."
- " समन्दर....."
- " शैतानी बाहर या अन्दर....."
- " अन्दर....."

इसी तरह डमरू बजाते हुए और भी न जाने क्या - क्या बड़बड़ाते जा रहा था रामदीन और उसका बेटा अंकुर। धीरे-धीरे गाँधी मैदान के उत्तरी छोड़ पर दोनों बाप-बेटे के आसपास लोगों की भीड़ लगनी शुरू हो गई। रोज की तरह वे अपना करतब दिखाने की तैयारी में लग गये।

गंगा का कटाव अपना भीषण रूप ले चुका था और सरकार के उदासीन रवैये के कारण उनका भी गाँव कटाव की भेंट चढ़ चुका था। पूरा गाँव ही पलायन कर गया। उनके घर में भी बाप-बेटे के अलावे और कोई नहीं था। दोनों बाप-बेटे भी रोजगार की तलाश में शहर आ गए। तब से वे यहीं शहर में रहकर छोटा-मोटा करतब दिखाकर अपना पेट पाल रहे थे। कभी डाक बंगला चौराहा, कभी चर्च गेट, कभी म्यूजियम तो कभी

कहीं और। आज वे गाँधी मैदान में अपना करतब दिखा रहे थे। ये पेट भी अजीब चीज है - न जाने लोगों से कैसे-कैसे काम करवाती है.....?

करतब दिखाने के दौरान अंकुर को थोड़ी देर के लिए मरना होता था। सचमुच का मरना नहीं बल्कि यूँ कहें कि मरने का अभिनय करना होता था। वह तो सिर्फ मरने का अभिनय ही करता था किंतु वह उनलोगों से कहीं बेहतर था जो जीवित तो हैं किंतु उनकी संवेदनायें मर चुकी हैं। आज के संदर्भ में यदि देखा जाये तो बहुत कम लोगों के पास संवेदनायें बची हैं और इस संवेदनहीन समाज को मृत कहा जाना ही ज्यादा श्रेयस्कर है।

खेल के दौरान रामदीन चाकू से अंकुर के उदर पर वार करता था और अंकुर के पेट से खून का फव्वारा फूट पड़ता। इसके बाद वह जमीन पर गिरकर छटपटाने लगता और धीरे-धीरे उसका शरीर शांत होता चला जाता। अपने नियमित अभ्यास और जीवंत अभिनय से वह स्वयं को इतना स्थिर कर लेता कि तमाशबीन लोंगों को वास्तव में उसके मृत होने का भान होने लगता और एक-एक करके लोंगों की भीड़ रामदीन के कटोरे में पैसे डालती चली जाती। कुछ ही क्षण में उसके पास अच्छी खासी रकम जमा हो जाती। भीड़ छँटने के बाद अंकुर फिर से उठकर बैठ जाता। तबतक न जाने कितनी देर तक उसे साँस रोके जमीन पर मृत पड़े रहने का अभिनय करना होता था। रोज-रोज के इस झूठे अभिनय से वह तंग आ चुका था।

आज भी सुबह दोनों बाप-बेटे में इस करतब को लेकर चर्चा भी हुयी। अंकुर कह रहा था - " बाबा, मैं तंग आ गया हूँ इस रोज-रोज के झूठे अभिनय से। अब मेरा मन जरा भी इस खेल को करने का नहीं होता और फिर इस खेल में खतरा भी तो बहुत है। यदि किसी दिन आपका निशाना चूक गया तो.....। क्यों नहीं हमलोग कोई दूसरा काम देख लें....? आखिर जीने के लिए कुछ न कुछ तो ढंग का कर ही लेंगें। "

- " बात तो तुम ठीक ही कहते हो बेटा। लेकिन कोई दूसरा काम करने से पहले हाथ में चार पैसे भी तो होने चाहिये। वैसे इस काम में तुम्हें दिक्कत क्या है....? दोनों बाप-बेटे मिलकर कितना अच्छा तो कमा रहे हैं.....? "

- " लेकिन फिर भी बाबा, मुझे झूठा अभिनय करना अच्छा नहीं लगता। मुझे लगता है कि

ऐसा करके हम लोगों की भीड़ को बेवकूफ ही तो बना रहे हैं, उन्हें धोखा ही तो दे रहे हैं। वैसे सच्चाई भी तो यही है। क्या आप इस बात से इनकार कर सकते हैं....? " - अंकुर ने अपनी परेशानी बताई।

- " कहना तो तुम्हारा ठीक है। लेकिन तुम यह भी तो देखो हम किसे बेवकूफ बना रहे हैं....? इसे बेवकूफ बनाना या धोखा देना नहीं कहते। हम अपने करतब से उनका मनोरंजन भी तो कर रहे हैं। और मनोरंजन के बदले कोई हमें चार पैसे दे ही देता है तो इसमें गलत क्या है.....? - रामदीन ने समझाते हुए कहा।

- " फिर भी बाबा गलत तो गलत....."

अंकुर की बात को बीच में ही काटता हुआ रामदीन तैश में आकर बोला - " इसमें गलत जैसा कुछ भी नहीं है। हम उन्हें घर से बुलाने नहीं जाते हैं कि चलो और हमारा तमाशा देखो। वे स्वयं चलकर हमारे पास आते हैं। फिर तुम किस झूठे अभिनय की बात कर रहे हो...? क्या तुम मुझे बता सकते हो कि आज के समाज में कौन झूठा नहीं है...? सब के सब तो झूठा अभिनय ही कर रहे हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति ने अपने चेहरे पर एक नकली मुखौटा लगा रखा है जो समय और पात्र के अनुसार बदलता रहता है। किसी परिचित से मिले तो शिष्टाचार का मुखौटा लगा लिया। स्ययं से किसी छोटे से मिले तो बड़प्पन का मुखौटा लगा लिया। किसी बड़े से मिले तो बचपना और सौम्यता का तो किसी रिश्तेदार से मिले तो औपचारिकता का मुखौटा लगा लिया। प्रत्येक क्षण हम अपने चेहरे पर एक नकलीपन का मुखौटा लगाये जी रहे हैं। अगर ऐसे में हम पेट की खातिर थोड़ा सा झूठा अभिनय ही कर लेते हैं तो इसमें बुरा क्या है....? स्वयं को हम उस नकली मुखौटे वाली भीड़ से तो जरूर अच्छा समझते हैं। "

किन्तु उस अबोध को अपने बाप की ये गूढ़ बातें कहाँ समझ में आ रही थी...? उसने दुनियादारी देखी ही कहाँ थी...? तभी तो वह सही-गलत, उचित-अनुचित के चक्कर में पड़ गया था। जबकि सही-गलत, उचित-अनुचित सब हृदय के भाव हैं और समाज के द्वारा अपनी सुविधा के लिये निर्धारित की गयी सीमायें हैं। सत्य तो ये है कि हम उचित-अनुचित को किसी सीमा में बाँधकर नहीं रख सकते। इसकी कोई सीमा और परिभाषा नहीं होती।

अंकुर ने तो बस एक ही बात की रट लगा रखी थी कि मैं आज से यह खेल नहीं दिखाऊँगा तो बस नहीं दिखाऊँगा...। वो तो किसी तरह रामदीन ने उसे डाँट-डपट कर खेल दिखाने के लिए राजी किया।

उनके आसपास अब तक काफी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। रामदीन चाकू लेकर अंकुर की ओर बढ़ा। हमेशा की तरह अंकुर वार से बचने के लिए ईधर-उधर भागने लगा। इस बार वह भीड़ को चीरकर बाहर की ओर भागा। रामदीन दौड़कर उसे पकड़ लाया और चाकू का एक जोरदार प्रहार उसके पेट पर कर दिया। एक जोरदार चीख के साथ अंकुर जमीन पर गिर छटपटाने लगा और उसके पेट से गर्म खून का फव्वारा फूट पड़ा।

तमाशा देखने वालों की पूरी भीड़ साँस रोके स्तब्ध खड़ी थी। रामदीन खाली कटोरा लेकर भीड़ की तरफ बढ़ा और जो कुछ ही देर में सिक्कों से पूरा भर गया। फिर वह कटोरे को खाली करके भीड़ द्वारा अंकुर के पास फेंक दिये गये सिक्कों को समेटने लगा। उसने एक उड़ती नजर अंकुर पर डाली जो अब तक तड़प रहा था। मन ही मन वह अपने बेटे की एक्टिंग पर खुश भी हो रहा था। वहाँ खड़ी भीड़ के बारे में वह सोचने लगा कि सब यही समझ रहे होंगे कि अंकुर के आसपास खून के छीटें हैं। जबकि उन्हें क्या पता है कि वह गर्म खून के छीटें नहीं बल्कि लाल रंग का निशान है। न जाने कितनी ही बार उसने अंकुर के पेट पर बँधी रंग से भरी प्लास्टिक की थैली पर चाकू से वार किया है और अंकुर ने भी बखूबी मरने का स्वांग रचा है। एक उपेक्षा भरी हंसी उसने वहाँ खड़ी भीड़ के लिए हँसी और मन ही मन कहा - " साले बेवकूफ। अंकुर ठीक ही कह रहा था।"

कुछ क्षण पश्चात भीड़ धीरे-धीरे वहाँ से छँट गयी। रामदीन अब तक पैसों को मिलाने में ही व्यस्त था और अंकुर का शरीर बिल्कुल शांत पड़ा था। पूरा पैसा गिन लेने के बाद रामदीन ने खुश होकर कहा - " वाह बेटा। आज कितना जबरदस्त अभिनय किया तुमने....? घंटे भर में ही हमने पूरे पाँच सौ रुपये की कमाई की। इतना तो हम कई दिनों का खेल दिखाने के बाद भी नहीं कमा पाते। आज का हमारा शगुन काफी अच्छा था और आज मैं बहुत खुश हूँ। तू अक्सर पाल रेस्टोरेंट की बात किया करता था न। चल आज हम दोनों बाप-बेटे वहाँ का मसाला डोसा खायेंगे। आज की पूरी कमाई तुम्हारे जीवंत अभिनय के कारण ही तो हुआ है। तू भी क्या याद रखेगा अपने बाप को.....?"

रामदीन ने महसूस किया कि वह काफी देर से इतना कुछ बोले जा रहा है और अंकुर कोई जवाब नहीं दे रहा है। वह उठकर अंकुर के पास पहुँचा और उसे हिलाकर उठाना चाहा। अंकुर पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुयी और वह उसी प्रकार निःशब्द, शान्त पड़ा रहा। घबड़ाकर रामदीन ने अंकुर के शर्ट को ऊपर की ओर खींचा। जो दृश्य उसकी आँखों के सामने था उसपर उसे विश्वास ही नहीं हुआ। लाल रंग से भरी प्लास्टिक की थैली जस की तस सुरक्षित पड़ी थी और चमचमाती चाकू थैली के बगल में अंकुर के पेट में गोदा हुआ था।

तो क्या इतनी देर से उसका बेटा वास्तव में दर्द से तड़पता रहा और वह उसे एक्टिंग समझता रहा....? तो क्या अंकुर के आसपास बिखरे लाल रंग के छींटे उसके अपने बेटे के रक्त के छीटें थे.....? तो क्या आज उसके हाथों अपने ही बेटे का कत्ल.....।

एक भयानक चीत्कार के साथ रामदीन मूर्छित होकर गिर पड़ा.....

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें